जिसका रचनाकाल सातवीं शताब्दी ई० है। शृंगारशतक भी इसी समय का है। अतः विजयोदयाटीका इसके पश्चात् ही रची गई है। यह उसकी पूर्वावधि है। विजयोदया में सातवीं शती ई० के बाद के किसी भी ग्रन्थ से न तो कोई उद्धरण दिया गया है, न किसी ग्रन्थ का नामोल्लेख है। अतः यही अनुमानित होता है कि विजयोदयाटीका का लेखन नौवीं शती ई० के पूर्व अर्थात् आठवीं शताब्दी में हुआ है।

प्रेमी जी ने लिखा है कि "गंगवंश के पृथ्वीकोङ्गुणि महाराज का एक दानपत्र श० सं० ६९८ (वि० सं० ८३३=७७६ ई०)[७७] का मिला है। उसमें यापनीयसंघ के चन्द्रनन्दी, कीर्तिनन्दी और विमलचन्द्र को 'लोकतिलक' जैनमन्दिर के लिए एक गाँव दिये जाने का उल्लेख है। अपराजित शायद इन्हीं चन्द्रनन्दी के प्रशिष्य होंगे।"(जै.सा.इ./द्वि.सं./पृ.७९)।

किन्तु, यह अनुमान समीचीन नहीं है, क्योंकि अपराजित सूरि यापनीयसम्प्रदाय के नहीं थे, अपितु वे पक्के दिगम्बर थे, इसके प्रमाण **'अपराजितसूरि : दिगम्बर आचार्य'** नाम के चतुर्दश अध्याय में द्रष्टव्य हैं। अतः वे किसी दिगम्बर चन्द्रनन्दी-महाप्रकृत्याचार्य के प्रशिष्य और बलदेवसूरि के शिष्य थे।[७८]

९.२. विजयोदया में कुन्दकुन्द की गाथाओं के उदाहरण

आठवीं शती ई० के पूर्वार्ध में हुए अपराजित सूरि ने 'भगवती-आराधना' की **विजयोदया-टीका** में आचार्य कुन्दकुन्द-रचित प्रवचनसार, समयसार, पंचास्तिकाय और बारस-अणुवेक्खा से कई गाथाएँ **'उक्तं च'** आदि प्रस्तावना के साथ उद्धृत की हैं। यथा—

'सिद्धे जयप्पसिद्धे' इस मंगलगाथा (क्र.१) की टीका में प्रवचनसार एवं पञ्चास्तिकाय की निम्नलिखित गाथाएँ अधोलिखित प्रस्तावना-वाक्यों के साथ उद्धृत की गयी हैं—

"**क्वचित्तीर्थकृत्स्वपि वीरस्वामिनः एव प्रथमं नमस्क्रिया—**

एस सुरासुरमणुसिंदवंदिदं धोदघादिकम्ममलं।
पणमामि वड्ढमाणं तित्थं धम्मस्स कत्तारं॥ १/१॥ प्र.सा.।

सेसे पुण तित्थयरे ससव्वसिद्धे विसुद्धसब्भावे।
समणे य णाणदंसण-चरित्ततव-वीरियायारे॥ १/२॥" प्र.सा.।

---

७७. जैन शिलालेख संग्रह / माणिकचन्द्र / भाग २ / देवरहल्लि-लेख क्र.१२१।

७८. देखिये, भगवती-आराधना-विजयोदयाटीका-प्रशस्ति।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

जिसका रचनाकाल सातवीं शताब्दी ई० है। शृंगारशतक भी इसी समय का है। अत: विजयोदयाटीका इसके पश्चात् ही रची गई है। यह उसकी पूर्वावधि है। विजयोदया में सातवीं शती ई० के बाद के किसी भी ग्रन्थ से न तो कोई उद्धरण दिया गया है, न किसी ग्रन्थ का नामोल्लेख है। अत: यही अनुमानित होता है कि विजयोदयाटीका का लेखन नौवीं शती ई० के पूर्व अर्थात् आठवीं शताब्दी में हुआ है।

प्रेमी जी ने लिखा है कि "गंगवंश के पृथ्वीकोङ्गुणि महाराज का एक दानपत्र श० सं० ६९८ (वि० सं० ८३३=७७६ ई०)[७७] का मिला है। उसमें यापनीयसंघ के चन्द्रनन्दी, कीर्तिनन्दी और विमलचन्द्र को 'लोकतिलक' जैनमन्दिर के लिए एक गाँव दिये जाने का उल्लेख है। अपराजित शायद इन्हीं चन्द्रनन्दी के प्रशिष्य होंगे।"(जै.सा.इ./ द्वि.सं./ पृ.७९)।

किन्तु , यह अनुमान समीचीन नहीं है, क्योंकि अपराजित सूरि यापनीयसम्प्रदाय के नहीं थे, अपितु वे पक्के दिगम्बर थे, इसके प्रमाण **'अपराजितसूरि : दिगम्बर आचार्य'** नाम के चतुर्दश अध्याय में द्रष्टव्य हैं। अत: वे किसी दिगम्बर चन्द्रनन्दी-महाप्रकृत्याचार्य के प्रशिष्य और बलदेवसूरि के शिष्य थे।[७८]

९.२. विजयोदया में कुन्दकुन्द की गाथाओं के उदाहरण

आठवीं शती ई० के पूर्वार्ध में हुए अपराजित सूरि ने 'भगवती-आराधना' की **विजयोदया-टीका** में आचार्य कुन्दकुन्द-रचित प्रवचनसार, समयसार, पंचास्तिकाय और बारस-अणुवेक्खा से कई गाथाएँ **'उक्तं च'** आदि प्रस्तावना के साथ उद्धृत की हैं। यथा—

'सिद्धे जयप्पसिद्धे' इस मंगलगाथा (क्र.१) की टीका में प्रवचनसार एवं पञ्चास्तिकाय की निम्नलिखित गाथाएँ अधोलिखित प्रस्तावना-वाक्यों के साथ उद्धृत की गयी हैं—

"**क्वचित्तीर्थकृत्स्वपि वीरस्वामिनः एव प्रथमं नमस्क्रिया—**

एस सुरासुरमणुसिंदवंदिदं धोदघादिकम्ममलं।
पणमामि वड्ढमाणं तित्थं धम्मस्स कत्तारं॥ १/१॥ प्र.सा.।

सेसे पुण तित्थयरे ससव्वसिद्धे विसुद्धसब्भावे।
समणे य णाणदंसण-चरित्ततव-वीरियायारे॥ १/२॥" प्र.सा.।

---

७७. जैन शिलालेख संग्रह / माणिकचन्द्र / भाग २ / देवरहल्लि-लेख क्र.१२१।

७८. देखिये, भगवती-आराधना-विजयोदयाटीका-प्रशस्ति।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"क्वचिदेकप्रघट्टेन—

इंदसदवंदिदाणं तिहुअणहिदमधुरविसदवक्काणमिति॥ १॥" प.का.।

'णाणस्स दंसणस्स' (भ.आ.११) गाथा की टीका में 'तथा चोक्तं' इस निर्देश के साथ **प्रवचनसार** की निम्न गाथा का उल्लेख किया गया है—

चारित्तं खलु धम्मो धम्मो जो सो समो त्ति णिद्दिट्ठो।
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो हु समो॥ १/७॥

'णाणेण सव्वभावा' (भ. आ.१००) गाथा के भाव की पुष्टि के लिए **प्रवचनसार** की अधोलिखित गाथा प्रस्तुत की गयी है और अन्त में 'इति वचनात्' उक्ति से उसकी प्रमाणरूपता का प्रदर्शन किया गया है—

जादं सयं समत्तं णाणमणंतत्थवित्थिदं विमलं।
रहिदं तु उग्गहादिहिं सुहंति एयंतियं भणियं॥ १/५९॥

इति वचनात् ---।

'दंसणमाराहंतेण' (भ.आ.४) की टीका में निम्नलिखित प्रस्तावना-वाक्य के साथ **समयसार** की ४९वीं गाथा का पूर्वार्ध प्रमाणरूप में उद्धृत किया गया है—

"तत्रेदं परीक्ष्यते, विषयाकारपरिणतिरात्मनो यदि स्याद्रूपरसगन्धस्पर्शाद्यात्मकता स्यात्तथा च 'अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं' इत्यनेन विरोधः।"

'हिंसादो अविरमणं' (भ. आ. ८००) गाथा के अभिप्राय की पुष्टि अपराजित सूरि ने **समयसार** की इस गाथा के द्वारा की है—

अज्झवसिदेण बंधो सत्तो दु मरेज्ज णो मरिज्जेत्थ।
एसो बंधसमासो जीवाणं णिच्छयणयस्स॥ २६२॥

'एगविगतिगचउ' (भ.आ.१७६७) गाथा के कथन का समर्थन **बारस-अणुवेक्खा** की गाथा से किया गया है और गाथान्त में 'इति वचनात्' के उल्लेख द्वारा उसकी प्रमाणरूपता प्रदर्शित की गयी है—

णिरयादिजहण्णादिसु जाव दु उवरिल्लया दु गेवज्जा।
मिच्छत्तसंसिदेण दु भवट्ठिदी भज्जिदा बहुसो॥ २८॥

इति वचनात्।

'जत्थ ण जादो ण मदो' (भ.आ.१७७०) इस गाथा में वर्णित क्षेत्रपरिवर्तन के समर्थन हेतु **बारस-अणुवेक्खा** की निम्नलिखित गाथा 'उक्तं च' कहकर उद्धृत की गयी है—

सव्वम्मि लोगखित्ते कमसो तं णत्थि जण्ण उप्पण्णं।
ओगाहणा य बहुसो परिभमिदो खित्तसंसारे॥ २६॥

'तक्कालतदाकाल' (भ. आ. १७७१) के भाव की पुष्टि **बारस-अणुवेक्खा** की ही निम्नलिखित गाथा से **'उक्तं च'** निर्देशपूर्वक की गयी है—

उवसप्पिणिअवसप्पिणिसमयावलिगासु णिरवसेसासु।
जादो मदो य बहुसो भमणेण दु कालसंसारे॥ २७॥

'सज्झायं कुव्वंतो' (भ. आ.१०३) गाथा में वर्णित मनोवैज्ञानिक सत्य को प्रमाणित करने के लिए अपराजित सूरि ने **पंचास्तिकाय** का निम्न वचन उद्धृत किया है और **'इति वचनाच्च'** कहकर उसका प्रामाण्य दर्शाया है—

गदिमधिगदस्स देहो देहादो इंदियाणि जायंते।
तत्तो विसयग्गहणं तत्तो रागो व दोसो वा॥ १२९॥
इति वचनाच्च।

इस प्रकार आठवीं शताब्दी ई० के पूर्वार्ध में हुए अपराजित सूरि के द्वारा कुन्दकुन्द के उक्त वचनों को आगमप्रमाण के रूप में उद्धृत किये जाने से सिद्ध होता है कि वे अपराजित सूरि से बहुत प्राचीन थे।

१०

८ वीं श. ई. की धवला, जयधवला में कुन्दकुन्द की गाथाएँ

१०.१. धवला का रचनाकाल ७८० ई०

हरिवंशपुराणकार जिनसेन (द्वितीय) ने धवलाकार वीरसेन स्वामी और उनके शिष्य आदिपुराणकार जिनसेन (प्रथम) की स्तुति हरिवंशपुराण (१/३९-४०) में की है। इन्होंने अपना समय शक सं० ७०५ अर्थात् ई० सन् ७८३ बतलाया है।[७९] अतः वीरसेन स्वामी इनसे पूर्ववर्ती या इनके समकालीन थे। उन्होंने सन् ७८० ई० में धवलाटीका पूर्ण की थी।[८०]

१०.२. धवला में प्रमाणस्वरूप कुन्दकुन्द की गाथाएँ एवं ग्रन्थनाम

वीरसेन स्वामी ने षट्खण्डागम की धवला टीका एवं कसायपाहुड की जयधवला

---

७९. शाकेष्वब्दशतेषु सप्तसु दिशं पञ्चोत्तरेषूत्तरां ---
शान्तेः शान्तगृहे जिनस्य रचितो वंशो हरीणामयम्॥ ६६/५२-५३॥ हरिवंशपुराण।

८०. क—धवलाटीका / षट्खण्डागम / पु.१६ / धवलाकार-प्रशस्ति / पृ० ५९४।
ख—डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन : भारतीय इतिहास एक दृष्टि / पृ० २२१-२२२।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

सव्वम्मि लोगखित्ते कमसो तं णत्थि जण्ण उप्पण्णं।
ओगाहणा य बहुसो परिभमिदो खित्तसंसारे॥ २६॥

'**तक्कालतदाकाल**' (भ. आ. १७७१) के भाव की पुष्टि **बारस-अणुवेक्खा** की ही निम्नलिखित गाथा से '**उक्तं च**' निर्देशपूर्वक की गयी है—

उवसप्पिणिअवसप्पिणिसमयावलिगासु णिरवसेसासु।
जादो मदो य बहुसो भमणेण दु कालसंसारे॥ २७॥

'**सज्झायं कुव्वंतो**' (भ. आ.१०३) गाथा में वर्णित मनोवैज्ञानिक सत्य को प्रमाणित करने के लिए अपराजित सूरि ने **पंचास्तिकाय** का निम्न वचन उद्धृत किया है और '**इति वचनाच्च**' कहकर उसका प्रामाण्य दर्शाया है—

गदिमधिगदस्स देहो देहादो इंदियाणि जायंते।
तत्तो विसयग्गहणं तत्तो रागो व दोसो वा॥ १२९॥
इति वचनाच्च।

इस प्रकार आठवीं शताब्दी ई० के पूर्वार्ध में हुए अपराजित सूरि के द्वारा कुन्दकुन्द के उक्त वचनों को आगमप्रमाण के रूप में उद्धृत किये जाने से सिद्ध होता है कि वे अपराजित सूरि से बहुत प्राचीन थे।

१०
८वीं श. ई. की धवला, जयधवला में कुन्दकुन्द की गाथाएँ

१०.१. धवला का रचनाकाल ७८० ई०

हरिवंशपुराणकार जिनसेन (द्वितीय) ने धवलाकार वीरसेन स्वामी और उनके शिष्य आदिपुराणकार जिनसेन (प्रथम) की स्तुति हरिवंशपुराण (१/३९-४०) में की है। इन्होंने अपना समय शक सं० ७०५ अर्थात् ई० सन् ७८३ बतलाया है।[७९] अतः वीरसेन स्वामी इनसे पूर्ववर्ती या इनके समकालीन थे। उन्होंने सन् ७८० ई० में धवलाटीका पूर्ण की थी।[८०]

१०.२. धवला में प्रमाणस्वरूप कुन्दकुन्द की गाथाएँ एवं ग्रन्थनाम

वीरसेन स्वामी ने षट्खण्डागम की धवला टीका एवं कसायपाहुड की जयधवला

---

७९. शाकेष्वब्दशतेषु सप्तसु दिशं पञ्चोत्तरेषूत्तरां ---
शान्तेः शान्तगृहे जिनस्य रचितो वंशो हरीणामयम्॥ ६६/५२-५३॥ हरिवंशपुराण।

८०. क—धवलाटीका / षट्खण्डागम / पु.१६ / धवलाकार-प्रशस्ति / पृ० ५९४।
ख—डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन : भारतीय इतिहास एक दृष्टि / पृ० २२१-२२२।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

टीका में कुन्दकुन्द के पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, चारित्तपाहुड और भावपाहुड से गाथाएँ उद्धृत कर अपने कथन की पुष्टि की है। इसका विवरण माननीय पं० बालचन्द्र जी शास्त्री-कृत **षट्खण्डागम-परिशीलन** के आधार पर दिया जा रहा है।

१. "जीवस्थान-कालानुगम में कालविषयक निक्षेप की प्ररूपणा करते हुए धवला में **तद्व्यतिरिक्त-नोआगम-द्रव्यकाल** के प्रसंग में **'वुत्तं च पंचत्थिपाहुडे ववहार-कालस्स अत्थित्तं'** इस प्रकार **पंचास्तिकाय** ग्रन्थ का नाम-निर्देश करते हुए उसकी **'कालोत्ति य ववएसो---'** (१०१) और **'कालो परिणामभवो ---'** (१००) इन दो गाथाओं को विपरीत क्रम से (१०१ व १००) उद्धृत किया गया है।"[८१]

२. "आगे वेदनाकालविधान अनुयोगद्वार में तद्व्यतिरिक्त-नोआगम-द्रव्यकाल को प्रधान और अप्रधान के भेद से दो प्रकार का कहा गया है। उनमें प्रधान द्रव्यकाल के स्वरूप का निर्देश करते हुए धवला में कहा गया है कि शेष पाँच द्रव्यों के परिणमन का हेतुभूत जो रत्नराशि के समान प्रदेशसमूह से रहित लोकाकाश के प्रदेशों का प्रमाण-काल है, उसका नाम प्रधान द्रव्यकाल है। वह अमूर्त व अनादिनिधन है। उसकी पुष्टि में आगे **'उक्तं च'** इस सूचना के साथ ग्रन्थनामनिर्देश के बिना **पंचास्तिकाय** की उपर्युक्त दोनों गाथाएँ यथाक्रम (१००-१०१) उद्धृत की गयी हैं।"[८२]

३. "पूर्वोक्त जीवस्थान-कालानुगम में उसी कालविषयक निक्षेप के प्रसंग में धवलाकार ने द्रव्यकालजनित परिणाम को **नोआगम-भावकाल** कहा है। इस पर वहाँ यह शंका की गयी है कि पुद्गलादि द्रव्यों के परिणाम को 'काल' नाम से कैसे व्यवहृत किया जाता है? इसके उत्तर में कहा गया है कि यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि उसे जो 'काल' नाम से व्यवहृत किया जाता है, वह कार्य में कारण के उपचार से किया जाता है। इसकी पुष्टि में वहाँ **'वुत्तं च पंचत्थि-पाहुडे ववहारकालस्स अत्थित्तं'** ऐसी सूचना करते हुए **पंचास्तिकाय** की २३, २५ और २६ ये तीन गाथाएँ उद्धृत की गयी हैं।"[८३]

४. "जीवस्थान सत्प्ररूपणा में **षट्खण्डागम** का पूर्वश्रुत से सम्बन्ध दिखलाते हुए **स्थानांग** के प्रसंग में धवला में कहा गया है कि वह ब्यालीस हजार पदों के द्वारा एक से लेकर उत्तरोत्तर एक-एक अधिक के क्रम से स्थानों का वर्णन करता है। आगे वहाँ **तस्सोदाहरणं** ऐसा निर्देश करते हुए ग्रन्थनाम-निर्देश के बिना **पंचास्तिकाय**

---

८१. धवलाटीका / षट्खण्डागम / पु.४ / १,५,१ / पृ.३१५ (षट्खण्डागम-परिशीलन / पृ० ५९५)।
८२. धवलाटीका / षट्खण्डागम / पु.११/ ४,२,५,१/ पृ.७५-७६ (षट्खण्डागम-परिशीलन/पृ० ५९५)।
८३. धवलाटीका / षट्खण्डागम / पु.४/१,५,१/ पृ.३१७ (षट्खण्डागम-परिशीलन / पृ. ५९५)।

की **'एक्को चेय महप्पो'** (७१) और **'छक्कावक्कमजुत्तो'** (७२) इन दो गाथाओं को उद्धृत किया गया है।''[८४]

''ये दोनों गाथाएँ आगे इसी प्रसंग में 'कृति-अनुयोगद्वार' में पुनः धवलाकार द्वारा उद्धृत की गयी हैं।''[८५]

५. ''उपर्युक्त कृति-अनुयोगद्वार में नयप्ररूपणा के प्रसंग में धवला में द्रव्यार्थिकनय के ये तीन भेद निर्दिष्ट किये गये हैं : नैगम, संग्रह और व्यवहार। इनमें संग्रहनय के स्वरूप को प्रकट करते हुए कहा गया है कि जो पर्यायकलंक से रहित होकर सत्ता आदि के आश्रय से सबकी अद्वैतता का निश्चय करता है (सबको अभेदरूप में ग्रहण करता है) वह संग्रहनय कहलाता है, वह शुद्ध द्रव्यार्थिकनय है। आगे वहाँ **'अत्रोपयोगिनी गाथा'** इस निर्देश के साथ ग्रन्थनामोल्लेख के बिना **पंचास्तिकाय** की **'सत्ता सव्वपयत्था'** आदि गाथा (८) उद्धृत की गयी है।''[८६]

६. ''वर्गणा खण्ड के अन्तर्गत स्पर्श-अनुयोगद्वार में द्रव्यस्पर्श के प्रसंग में पुद्गलादि द्रव्यों के पारस्परिक स्पर्श को दिखलाते हुए धवला में **'एत्थुवउज्जंतीओ गाहाओ'** ऐसी सूचना करके **'लोगागासपदेसे एक्केक्के'** आदि गाथा के साथ **पंचास्तिकाय** की **'खंधं सयलसमत्थं'** गाथा (७५) को उद्धृत किया गया है।''[८७]

७. ''जीवस्थान खण्ड के अवतार की प्ररूपणा करते हुए उस प्रसंग में आचार्य कुन्दकुन्दकृत **चारित्रप्राभृत** की **'दंसण-वद-सामाइय'** आदि गाथा (२१) को उद्धृत कर धवला में कहा गया है कि **उपासकाध्ययन** नाम का अंग ग्यारह लाख सत्तर हजार पदों के द्वारा दर्शनिक, व्रतिक व सामायिकी आदि ग्यारह प्रकार के उपासकों के लक्षण, उनके व्रतधारण की विधि और आचरण की प्ररूपणा करता है।''[८८]

८. ''जीवस्थान-खण्ड के प्रारंभ में आचार्य पुष्पदन्त के द्वारा जो मंगल किया गया है, उस पंचनमस्कारात्मक मंगल की प्ररूपणा में प्रसंगप्राप्त नैःश्रेयस सुख के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए धवला में **प्रवचनसार** की **'अदिसयमादसमुत्थं'** आदि गाथा (१/१३) उद्धृत की गयी है।''[८९]

---

८४. धवलाटीका / षट्खण्डागम / पु.१ / १,१,२ / पृ.१०१ (षट्खण्डागम-परिशीलन / पृ. ५९५)।
८५. धवलाटीका / षट्खण्डागम / पु.९ / ४,१,४५ / पृ.१९८ (षट्खण्डागम-परिशीलन / पृ. ५९५)।
८६. धवलाटीका / षट्खण्डागम / पु.९ / ४,१,४५ / पृ.१७०-१७१ (षट्खण्डागम-परिशीलन / पृ. ५९६)।
८७. धवलाटीका / षट्खण्डागम / पु.१३ / ५,३,१२ / पृ.१३ (षट्खण्डागम-परिशीलन / पृ. ५९६)।
८८. धवलाटीका / षट्खण्डागम / पु.१ / १,१,२ / पृ.१०३ (षट्खण्डागम-परिशीलन / पृ. ६१४)।
८९. धवलाटीका / षट्खण्डागम / पु.१ / १,१,१ / पृ.५९ (षट्खण्डागम-परिशीलन / पृ०६३४)।

९. "जीवस्थान-द्रव्यप्रमाणानुगम में द्रव्यभेदों का निर्देश करते हुए धवला में जीव-अजीव के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है। वहाँ जीव के साधारण लक्षण का निर्देश करते हुए यह कहा है कि जो पाँच वर्ण, पाँच रस, दो गन्ध व आठ प्रकार के स्पर्श से रहित, सूक्ष्म, अमूर्तिक, गुरुता व लघुता से रहित, असंख्यात-प्रदेशवाला और आकार से रहित हो, उसे जीव जानना चाहिए। यह जीव का साधारण लक्षण है। प्रमाण के रूप में वहाँ '**वुत्तं च**' कहकर **समयसार** की निम्नलिखित गाथा उद्धृत की है—

अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं॥ ४९॥

"यह गाथा प्रवचनसार (२/८०) तथा पञ्चास्तिकाय (१२७) में भी है।"[९०]

१०. "आगे बन्धस्वामित्वविचय में वेदमार्गणा के प्रसंग में अपगतवेदियों को लक्ष्य करके पाँच ज्ञानावरणीय आदि सोलह प्रकृतियों के बन्धक-अबन्धकों का विचार किया गया है। इस प्रसंग में धवलाकार ने उन सोलह प्रकृतियों का पूर्व में बन्ध और तत्पश्चात् उदय व्युच्छिन्न होता है, यह स्पष्ट करते हुए '**एत्थुवउज्जंती गाहा**' ऐसा निर्देश कर इस गाथा को उद्धृत किया है—

आगमचक्खू साहू इंदियचक्खू असेसजीवा जे।
देवा य ओहिचक्खू केवलचक्खू जिणा सव्वे॥

"यह गाथा कुछ पाठभेद के साथ प्रवचनसार में इस प्रकार उपलब्ध होती है—"

आगमचक्खू साहू इंदियचक्खूणि सव्वभूदाणि।
देवा य ओहिचक्खू सिद्धा पुण सव्वदो चक्खू॥ ३/३४॥"[९१]

११. "प्रकृति अनुयोगद्वार में श्रुतज्ञान के पर्याय-शब्दों का स्पष्टीकरण करते हुए धवला में प्रवचनसार की '**जं अण्णाणी कम्मं**' आदि गाथा (३/३८) उद्धृत की गयी है।"[९२]

१२. "जीवस्थान-चूलिका के अन्तर्गत प्रथम 'प्रकृति समुत्कीर्तन' चूलिका में दर्शनावरणीय के प्रसंग में जीव के ज्ञान-दर्शन लक्षण को प्रकट करते हुए धवलाकार

---

९०. धवलाटीका / षट्खण्डागम / पु.३ / १,२,१ / पृ.२ (षट्खण्डागम-परिशीलन / पृ०६३५)।
९१. धवलाटीका / षट्खण्डागम / पु.८ / ३,१७९ / पृ.२६४ (षट्खण्डागम-परिशीलन / पृ.६३५)।
९२. धवलाटीका / षट्खण्डागम / पु.१३ / ५,५,५० / पृ.२८१ (षट्खण्डागम-परिशीलन / पृ.६३५)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

ने कुन्दकुन्द-विरचित **भावप्राभृत** के **'एगो मे सस्सदो अप्पा'** आदि गाथा (५९) को उद्धृत किया है।''[९३]

इनके अतिरिक्त कुन्दकुन्द की निम्नलिखित गाथाएँ भी धवला एवं जयधवला में उद्धृत की गयी हैं—

मरदु वा जियदु वा जीवो अयदाचारस्स णिच्छिदा हिंसा।
पयदस्स णत्थि बंधो हिंसामेत्तेण समिदस्स॥

प्र.सा.३ / १७, ष.ख. / पु.१४ / पृ.९०, क.पा. / भा.१ / पृ.९४।

उच्चालिदम्मि पाए इरियासमिदस्स णिग्गमट्ठाणे।
आबाधेज्ज कुलिंगो मरेज्ज तं जोगमासेज्ज॥

ण हि तस्स तण्णिमित्तो बंधो सुहुमो य देसिदो समये।
मुच्छा परिग्गहो च्चिय अज्झप्पपमाणदो भणिदो॥

प्र.सा. / ता.वृ.पाठ ३ / १७-१,२, क.पा. / भा.१/ पृ.९४-९५।

वत्थुं पडुच्च तं पुण अज्झवसाणं ति भणइ ववहारो।
ण य वत्थुदो हु बंधो बंधो अज्झप्पजोएण॥

स.सा. / २६५, क.पा. / भा.१ / पृ.९५।

अज्झवसिदेण बंधो सत्ते मारेउ मा व मारेउ।
एसो बंधसमासो जीवाणं णिच्छयणयस्स॥

स.सा./२६२, क.पा./भा.१/पृ.९४।

जीवपरिणामहेदुं कम्मत्तं पुग्गला परिणमंति।
पुग्गलकम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमइ॥[९४]

स.सा. / ८०, ष.खं. / पु.६ / पृ.१२।

आठवीं शती ई० के वीरसेन स्वामी के द्वारा **धवला** और **जयधवला** में कुन्दकुन्द की उपर्युक्त गाथाओं के प्रमाणरूप में उद्धृत किये जाने तथा **पंचत्थिपाहुड** ग्रन्थ का उल्लेख किये जाने से सिद्ध है कि कुन्दकुन्द आठवीं शती ई० से बहुत पहले हुए थे।

---

९३. धवलाटीका / षट्खण्डागम / पु.६ / १,९-१,६/पृ.९ (षट्खण्डागम-परिशीलन / पृ०६३७)।

९४. धवलाटीका में गाथा का उत्तरार्ध इस प्रकार है—''**ण य णाणपरिणदो पुण जीवो कम्मं समादियदि।**''

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

११

मर्करा-ताम्रपत्रलेख में कुन्दकुन्दान्वय का उल्लेख

मर्करा के खजाने से प्राप्त ताम्रपत्रलेख में शकसंवत् ३८८ (४६६ ई०) में कुन्दकुन्दान्वय के आचार्य **चन्द्रनन्दी-भटार** को एक जिनालय के लिए ग्रामदान का उल्लेख है। लेख की सम्बद्ध पक्तियाँ इस प्रकार हैं—

''श्रीमान् कोङ्गणिमहाधिराज अविनीतनामधेय दत्तस्य देसिगगण-कोण्डकुन्दान्वय-गुणचन्द्रभटारशिष्यस्य अभणन्दि (अभयनन्दि) भटार तस्य शिष्यस्य शीलभद्रभटार-शिष्यस्य जयणन्दिभटार-शिष्यस्य गुणणन्दिभटारशिष्यस्य चन्दणंदिभटारग्गें अष्टा-असीति-उत्तरस्य त्रयो-स (श) तस्य संवत्सरस्य माघमासं सोमवारं स्वातिनक्षत्र सुद्ध पञ्चमी अकालवर्ष-पृथुवीवल्लभमन्त्री तळवननगर श्रीविजयजिनालयक्के --- बदणेगुप्पेनाम अविनीतमहाधिराजेन दत्तेन पडिये आर्गेळमूरू।''(जै.शि.सं. / मा.च. / भा.२/ ले.क्र.९५)।

इसमें कहा गया है कि कोङ्गणि-महाधिराज अविनीत के द्वारा देशीयगण, कोण्डकुन्दान्वय के गुणचन्द्रभटार के शिष्य अभयणन्दिभटार, उनके शिष्य शीलभद्रभटार, उनके शिष्य जयणन्दिभटार, उनके शिष्य गुणणन्दिभटार, उनके शिष्य चन्दणन्दिभटार को तळवननगर के श्रीविजय-जिनालय के लिए दिया गया बदणेगुप्पे नामक गाँव अकालवर्ष-पृथुवी-वल्लभ-मन्त्री ने शकसंवत् ३८८ की माघ शुक्ल पञ्चमी, सोमवार को स्वातिनक्षत्र में इस मन्दिर को प्रदान किया।

कुन्दकुन्दान्वय में इन छह गुरु-शिष्यों की परम्परा का काल १५० वर्ष और कुन्दकुन्दान्वय के प्रतिष्ठित होने के लिए ५० वर्ष का अन्तराल मानने पर कुन्दकुन्द का समय ताम्रपत्रलेख के समय (४६६ ई०) से दो सौ वर्ष पूर्व अर्थात् २६६ ई० घटित होता है।[९५]

किन्तु यह इस ताम्रपत्रलेख के अनुसार कुन्दकुन्दान्वय के आरंभ का अनुमानित काल है। अन्य स्रोतों से कुन्दकुन्दान्वय इससे पूर्ववर्ती सिद्ध होता है। पूर्वोद्धृत शिलालेखों और पट्टावलियों में प्रथम-द्वितीय शताब्दी ई० में हुए उमास्वाति को कुन्दकुन्दान्वय में उद्भूत बतलाया है। अतः कुन्दकुन्दान्वय की प्राचीनता से भी कुन्दकुन्द का अस्तित्व-काल ईसापूर्वोत्तर प्रथम शताब्दी ही सिद्ध होता है।

पूर्णतः कृत्रिम होने के मत का निरसन

उक्त लेख में **अकालवर्ष-पृथुवीवल्लभ-मंत्री** नाम आया है। जैन शिलालेखों के

---

९५. जुगलकिशोर मुख्तार : 'जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश' / पृ.६०२।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अध्येता डॉ० गुलाबचन्द्र जी चौधरी का कथन है कि यह नाम "हमें बलात् राष्ट्रकूटवंश के इतिहास की ओर ले जाता है। इस वंश में **अकालवर्ष**-उपाधिधारी तीन नरेश हुए हैं। उन सभी का नाम कृष्ण था। कृष्ण प्रथम का समय सन् ७५८ से ७७८ ई० के लगभग, द्वितीय का सन् ७७९ से ९१४ ई० के लगभग तथा तृतीय का सन् ९३७ से ९६८ ई० के लगभग बतलाया जाता है।"[९६] --- "लेख नं० ९५ (मर्करा ताम्रपत्र) में चन्दणन्दिभटार को श्रीविजय-जिनालय के लिए अकालवर्ष नृप (कृष्ण तृतीय) के मन्त्री द्वारा बदणेगुप्पे नामक गाँव के दान का उल्लेख है।"[९७] इसे दृष्टि में रखते हुए वे लिखते हैं-"इस सबसे हमें लगता है कि मर्करा के प्राचीन ताम्रपत्रों को उक्त राजा के काल में पुनः नये रूप में उत्कीर्ण किया गया है। तभी इन नामों एवं घटना आदि के साथ दान से सम्बन्धित देशीयगण, कोण्डकुन्दान्वय के आचार्यों के नाम लिखे गये हैं।"[९८]

मेरा मत भी ऐसा ही है कि उक्त राजा के काल में इन ताम्रपत्रों का पुनर्लेखन कराया गया है और लेख में कुछ अंश नया जोड़ा गया है। अतः यह ताम्रपत्रलेख अंशतः कृत्रिम है। "राजा अविनीत या उसके मंत्री ने शक सं० ३८८ में तळवननगर के श्रीविजय-जिनालय के लिए बदणेगुप्पे ग्राम कुन्दकुन्दान्वय के चन्दणन्दिभटार को दान किया था," यह वृत्तान्त तो पुनर्लिखित ताम्रपत्रों में पूर्ववत् ही रखा गया है, शेष वृत्तान्त नया जोड़ दिया है। यदि ग्रामदान के वृत्तान्त को भी बाद में जोड़ा गया माना जाय तो निम्नलिखित प्रश्न उठते हैं—

१. यदि राजा अकालवर्ष-पृथ्वीवल्लभ कृष्ण तृतीय (९३७-९६८ ई०) के काल में मर्करा-ताम्रपत्र लेख में ग्रामदान का वृत्तान्त भी बाद में जोड़ा गया हो, तो उस राजा के मन्त्री के साथ ५०० वर्ष पूर्व (शक सं० ३८८=४६६ ई०) की घटना क्यों जोड़ी गयी, जिसका उसके समय में घटित होना असंभव है? इसके अतिरिक्त राजा कोङ्गणिवर्मा अविनीत (४२५ ई०)[९९] अपने से ५०० वर्ष बाद होनेवाले अविद्यमान मंत्री को तळवननगर-जिनालय के लिए दान करने हेतु कोई ग्राम आदि वस्तु कैसे दे सकता था ?

२. अपने राज्य का ग्राम उन्होंने दूसरे राज्य के मंत्री के द्वारा क्यों दिलवाया? अपने ही मंत्री के द्वारा क्यों नहीं दिलवाया या स्वयं क्यों नहीं दिया ?

---

९६. जैन शिलालेख संग्रह/ माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला / भा.३ / प्रस्तावना / पृ.४८। धवला / पु.६ / पृ.१२।
९७. वही/ भाग ३ / प्रस्तावना / पृ./ ५३।
९८. वही / भाग ३ / प्रस्तावना/ पृ.५०/ पादटिप्पणी।
९९. वही / भा.२ / नोणमंगल-लेख क्र. ९४।